**ओ३म्**

**‘श्रीमद्भगवद्गीता व सत्यार्थप्रकाश के** **अनुसार जीवात्मा का यथार्थ स्वरूप’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

जीवात्मा के विषय में वैदिक सिद्धान्त है कि यह अनादि, अनुत्पन्न, अजर, अमर, नित्य, चेतन तत्व वा पदार्थ है। जीवात्मा जन्ममरण धर्मा है, इस कारण यह अपने पूर्व जन्मों के कर्मानुसार जन्म लेता है, नये कर्म करता व पूर्व कर्मों सहित नये कर्मों के फलों को भोक्ता है और आयु पूरी होने पर मृत्यु को प्राप्त होता है। संसार में हम जितनी भी प्राणी योनियां देखते हैं, इनमें से प्रायः सभी योनियों में हमारा जन्म हो चुका है। आज यद्यपि हम मनुष्य हैं परन्तु इससे पूर्व अनेकानेक बार इन सभी पशु व कीट-पतंगों आदि योनियों में भी रहकर हमने अपने पापों को भोगा है। मनुष्य योनि ही कर्म व फल भोग अर्थात् उभय योनि है जिसमें मनुष्य अपने प्रारब्ध के फल भोगने के साथ नये कर्म भी करता है और इससे इसके प्रारब्ध में कमी होकर नया प्रारब्ध बनता है। कर्म-फल सिद्धान्त के अनुसार यह नया प्रारब्ध ही इसके भावी जन्म वा जन्मों का आधार होता है। हम सबका जीवात्मा एक चेतन तत्व है। चेतन तत्व में ज्ञान व कर्म का होना स्वाभाविक गुण व धर्म है। जीवों में दो प्रकार के ज्ञान व गुण होते हैं, प्रथम स्वाभाविक व दूसरा नैमित्तिक। स्वाभाविक गुणों को नैमित्तिक गुणों के द्वारा जीवात्मा मनुष्य योनि में सुधारता है व बिगाड़ता भी है। सद्गुणों व सदाचरण से यह देव कोटि वा दुगुर्णों एवं दुराचार से यह असुर कोटि का मानव बनता है। देव कोटि उन्नत व विकसित जीवन होता है और असुरत्व का जीवन गिरावट व अवनति का होता है। प्रत्येक मनुष्य को बुराईयों वा असुरत्व को छोड़कर कर गुणी, विद्वान, सदाचारी व देवत्व कोटि को प्राप्त करना चाहिये।

आज के लेख में हम जीवात्मा के बारे में विचार कर रहे हैं। इसका कारण है कि या तो हम जीवात्मा के विषय में जानते ही नहीं या बहुत कम जानते हैं। कुछ बन्धु जीवात्मा विषयक मिथ्या ज्ञान भी रखते हैं जिसका कारण आर्ष व सत्य ग्रन्थों का स्वाध्याय न करना व रात्रि दिन धनोपार्जन व सुख-सुविधाओं से युक्त विलासी जीवन व्यतीत करना है। एक कारण आधुनिक गुरूओं के कुचक्र में फंसना भी है। धनोपार्जन में संलग्न, सुख सुविधाओं की मर्यादा का उल्लंघन करने वाले, वैदिक सिद्धान्तों से अपरिचित और पंच महायज्ञ न करने वाले बन्धुओं का जीवन भी कुछ परिस्थितियों को छोड़कर प्रायः अवनत व पतन का ही जीवन होता है। इसी के लिए आजकल अधिकांश संसार के लोग प्रयासरत है। जीवात्मा का यथार्थ स्वरूप जानकर जीवन को सन्तुलित बनाया जा सकता है। आईये, जीवात्मा की चर्चा करें और जीवात्मा का यथार्थ स्वरूप जानने का प्रयत्न करें। जीवात्मा का स्वरूप वर्णित करने वाला श्रीमद्भवगद्गीता ग्रन्थ का एक श्लोक 2/20 प्रस्तुत है। श्लोक है- **‘न जायते म्रियते वा कदाचिन् नायं भूत्वा भविता वा न भूयः। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।’** गीता के इस श्लोक में बताया गया है कि मनुष्यों व प्राणियों का जीवात्मा अनादि व अनन्त है। यह न कभी पैदा होता है और न मरता है। यह कभी होकर नहीं रहता और फिर कभी नहीं होगा, ऐसा भी नहीं है। यह (अज) अजन्मा अर्थात् अनादि, नित्य, शाश्वत अर्थात् निरन्तर चेष्टाशील सनातन तत्व है। शरीर के मरने वा मारे जाने पर भी यह मरता नहीं है। सो यदि नारियल का छिलका उतर गया तो हाय ! नारियल, हाय ! नारियल चिल्लाना मूर्खता है। हम समझते हैं कि श्लोक का हिन्दी में किया गया अर्थ अत्यन्त सरल है जिसे सभी समझ सकते हैं। इसके प्रति किसी मत-मतान्तर को भी कोई आपत्ति नहीं है अन्यथा वह इसका खण्डन अवश्य करते। इसका अर्थ यह भी है कि सभी मतों को जीवात्मा का यह यथार्थ स्वरूप स्वीकार है। गीता में इसके बाद अन्य श्लोकों में भी अनेक महत्वपूर्ण बातें कही गयीं हैं। एक अन्य श्लोक है- **‘वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृहणाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।22।।’** इसमें कहा गया है कि जिस प्रकार मनुष्य फटे पुराने वस्त्र उतार कर दूसरे नये वस्त्र ग्रहण कर लेता है इसी प्रकार देही=जीवात्मा पुराने शरीर को छोड़कर नये दूसरे शरीर को ग्रहण कर लेता है। इस श्लोक में मनुष्य शरीर की उपमा वस्त्रों से दी गई है जो कि यथार्थ ही है। यह श्लोक जीवात्मा विषयक विश्व साहित्य में अत्युत्तम व अन्यतम है। इसके अगले श्लोक में तो जीवात्मा के विषय में बहुत ही महत्वपूर्ण बातें कहीं गई हैं। श्लोक है- **‘नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारूतः।।23।।’** अर्थात् इस शरीर के स्वामी जीवात्मा को शस्त्र काट नहीं सकते। आग जला नहीं सकती। पानी गीला नहीं कर सकता और पवन वा वायु जीवात्मा को सुखा नहीं सकता।

यद्यपि गीता का दूसरा अध्याय पूरा ही पठनीय है और हम पाठकों से इसे पढ़ने की भी सलाह देंगे तथापि हम कुछ अन्य मुख्य श्लोक पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं। **‘अच्छेद्योऽयमदाह्याऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च। नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।।24।।’, ‘अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते। अस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि।।25।।’, ‘अथ चैनं नित्यजातं नित्य वा मन्यसे मृतम्। तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि।।26।।’, ‘जातस्य हि ध्रुवो मृत्युध्र्रवं जन्म मृत्स्य च। तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।27।।’ तथा ‘अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यान भारत। अव्यक्तनिधनान्येव तव का परिदेवना।।28।।’**

अब इन श्लोकों के अर्थ पर भी दृष्टि डाल लेते हैं। श्लोकार्थ- यही नहीं कि लोग इस जीवात्मा को काटते नहीं, किन्तु यह कट नहीं सकता-यह अच्छेद्य है। यह जल भी नहीं सकता-यह अदाह्य है। यह गल नहीं सकता-यह अक्लेद्य है। यह सूख नहीं सकता-यह अशोष्य है। जीवात्मा नित्य है, सम्पूर्ण देह में अपनी शक्ति के विस्तार से व्यापक है। जीवात्मा स्थिर है, अचल है, सनातन है।।24।। यह जीवात्मा छिपा हुआ है। यह एक परमाणु (जीवात्मा) किस प्रकार अनादि अनन्त शक्ति लिए हुए है, यह अचिन्त्य है। इसकी चेतना सुप्त हो सकती है, परन्तु लुप्त नहीं हो सकती। इस दृष्टि से यह अविकार्य है। इसको इस प्रकार का जान कर किसी मनुष्य की मृत्यु पर शोक करना उचित नहीं है।।25।। गीता के छब्बीसवें श्लोक में श्रीकृष्ण जी अर्जुन को कहते हैं कि हे अर्जुन ! जीवात्मा या तो अजर, अमर, अविनाशी है या क्षण भंगुर है, यह दो ही पक्ष हो सकते हैं। यदि यह अजर अमर है तो क्षण-भंगुर देह के जाने से इसका बिगड़ा क्या? और यदि यह नित्य मृत है तब तो जब स्वामी ही नहीं रहा फिर तो किसी का कुछ बिगड़ा ही नहीं। जब भोगने वाला ही न रहा तो रोयें किसे? इसलिये हे महाबाहो अर्जुन ! उस अवस्था में तो तुम्हें सुतरां शोक करना उचित नहीं। इस संसार में कोई अनहोनी घटना अचानक हो जाय तो धक्का भी लगे परन्तु सभी मनुष्यों का कालान्तर में मरना तो सुनिश्चित है। इसके अगले श्लोक (जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु) जो पैदा हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है, जो मरा है उसका जन्म निश्चित है। इस प्रकार जो अवश्यमेव हो के रहने वाली बात है उस पर शोक मनाना उचित नहीं। गीता के इस श्लोक में पुनर्जन्म के सिद्धान्त का बहुत ही सुन्दरता से वर्णन मिलता है। हमें लगता है कि इतना सुन्दर निश्चयात्मक वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। गीता के दूसरे अध्याय के इन्हीं श्लोको से अर्जुन का विषाद दूर हुआ था। जो भी दुःखी व्यक्ति इस अध्याय का अध्ययन करता है वह शोक रहित हो जाता है, ऐसा हमारा मानना है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि मृतक का पुनर्जन्म को निश्चयात्मक घोषित करने से मृतक श्राद्ध करना अनुचित व अनुपयोगी सिद्ध होता है। मृतक श्राद्ध की यह परम्परा जितनी जल्दी समाप्त हो जाये अच्छा है क्योंकि इससे जाति का बहुमूल्य समय एक अनावश्यक कार्य पर व्यय होने के साथ धन का भी अपव्यय होता है। अतिनिर्धन लोगों के लिए तो यह अभिशाप है जिन्हें इस कुप्रथा के पालन के लिए दूसरों से कर्ज लेना पड़ता है। गीता के अगले अट्ठाईसवें श्लोक में श्री कृष्ण जी अर्जुन को कहते हैं कि इस संसार में प्राणीमात्र का आदि अव्यक्त है, अन्त अव्यक्त है। केवल मध्य अर्थात् वर्तमान थोड़ी देर के लिए स्पष्ट होता है। अतः जिसके जन्म से पूर्व का पता नहीं, मृत्यु के बाद का पता नहीं तो ऐसी रहस्य में छिपी हुई जीवात्मा के लिए रोना धोना क्या?

महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में भी जीव के स्वरूप, कर्तव्य व लक्षण आदि की चर्चा कर महत्वपूर्ण तथ्यों को प्रकाशित किया है। वह लिखते हैं कि जीव और ईश्वर का स्वरूप, गुण, कर्म और स्वभाव कैसा है? इसका उत्तर देते हुए वह कहते हैं कि दोनों चेतनस्वरूप हैं। स्वभाव दोनों का पवित्र, अविनाशी और धार्मिकता आदि है। परन्तु परमेश्वर के सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, सब को नियम में रखना, जीवों को पाप पुण्यों के फल देना आदि धर्मयुक्त कर्म हैं। और जीव के सन्तानोत्पत्ति, उन का पालन, शिल्पविद्या आदि अच्छे-बुरे कर्म हैं। ईश्वर के नित्यज्ञान, आनन्द, अनन्त बल आदि गुण हैं। और जीव के- **‘इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनोलिंगमिति।। (न्याय दर्शन) एवं प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवन मनोगतीन्द्रियान्तर्विकाराः। सुखदुःखइच्छाद्वेषौ- प्रयत्नाश्चात्मनोलिंगानि।। (वैशेषिक दर्शन)।** सूत्रार्थः (इच्छा) पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा (द्वेष) दुःखादि की अनिच्छा, वैर, (प्रयत्न) पुरुषार्थ, बल, (सुख) आनन्द, (दुःख) विलाप, अप्रसन्नता, (ज्ञान) विवेक, पहिचानना, ये तुल्य हैं, परन्तु वैशेषिक में (प्राण) प्राणवायु को बाहर निकालना, (अपान) प्राण को बाहर से भीतर को लेना, (निमेष) आंख को मींचना, (उन्मेष) आंख को खोलना, (जीवन) प्राण का धारण करना, (मन) निश्चय, स्मरण और अहंकार करना, (गति) चलना, (इन्द्रिय) सब इन्द्रियों को चलाना, (अन्तर्विकार) भिन्न भिन्न क्षुधा, तृषा, हर्ष शोकादियुक्त होना, ये जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न हैं। इन्हीं से आत्मा की प्रतीति करनी, क्योंकि वह स्थूल नहीं है। जब तक आत्मा देह में होता है, तभी तक ये गुण प्रकाशित रहते हैं और जब शरीर छोड़ कर चला जाता है, तब ये गुण शरीर में नहीं रहते। जिस के होने से जो हों, और न होने से न हों, वे गुण उसी के होते हैं। जैसे दीप और सूर्यादि के न होने से प्रकाशादि का न होना और होने से होना है, वैसे ही जीव और परमात्मा का विज्ञान, गुणों के द्वारा होता है। जीवात्मा विषयक यथार्थ ज्ञान का महर्षि दयानन्द का यह उपदेश पाठको को उनकी अमृतमय देन है।

गीता व महर्षि दयानन्द की मान्यताओं के आधार पर जीवात्मा के यथार्थ स्वरूप का लेख में चित्रण हुआ है। इसे जानकर व समझकर कर ही मनुष्य मोह व शोक से मुक्त होता है। अतः यह ज्ञान विद्यार्थी जीवन में ही मनुष्यों को करा दिया जाना उचित है। महर्षि दयानन्द ने जीवात्मा के यथार्थ स्वरूप को जाना था। इसीलिए उन्होंने मृत्यु से पूर्व अपने प्राणों के उत्सर्जन का समय निश्चित कर अपने अनुयायियों से वार्तालाप कर उनको समझाया, कुछ को पुरुस्कार आदि दिये, सान्त्वनायें दीं, शौर कर्म कराया, शरीर को स्वच्छ किया, स्वच्छ वस्त्र धारण किये और ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना पूर्वक प्राणायाम के द्वारा अपनी आत्मा को शरीर से बाहर निकाल दिया। ऐसा दृश्य विश्व इतिहास में अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता। गीता में जीवात्मा का जो स्वरूप वर्णित है वही इसका वैदिक स्वरूप है। सभी मनुष्यों को इसे जानकर वैदिक विधि से ही ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करनी चाहिये और अवैदिक मूर्तिपूजा आदि से बचना चाहिये जिससे कि मृत्योत्तर जीवात्मा उन्नति व ईश्वर की निकटता को प्राप्त हो।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2,**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**